संयम स्वर्ण महोत्सव (२०१७-१८) की विनम्र प्रस्तुति क्र० ३२

महाकवि आचार्य विद्यासागर विरचित

डूबो मत, लगाओ डुबकी

(कविता संग्रह)

प्रकाशक

जैन विद्यापीठ

सागर (म० प्र०)

डूबो मत, लगाओ डुबकी

कृतिकार : महाकवि आचार्य विद्यासागर

संस्करण : २८ जून, २०१७

(आषाढ़ सुदी पंचमी, वीर निर्वाण संवत् २५४३)

आवृत्ति : ११००

वेबसाइट : www.vidyasagar.guru

प्रकाशक एवं प्राप्तिस्थान

जैन विद्यापीठ

भाग्योदय तीर्थ, सागर (म० प्र०) चलित दूरभाष ७५८२-९८६-२२२

ईमेल : jainvidyapeeth@gmail.com

मुद्रक

विकास ऑफसेट प्रिंटर्स एण्ड पब्लिसर्स

प्लाट नं. ४५, सेक्टर-एफ , इन्डस्ट्रियल एरिया गोविन्दपुरा

भोपाल (म० प्र०) ९४२५००५६२४

आद्य वक्तव्य

युग बीतते हैं, सृष्टियाँ बदलती हैं, दृष्टियों में भी परिवर्तन आता है। कई युगदृष्टा जन्म लेते हैं। अनेकों की सिर्फ स्मृतियाँ शेष रहती हैं, लेकिन कुछ व्यक्तित्व अपनी अमर गाथाओं को चिरस्थाई बना देते हैं। उन्हीं महापुरुषों का जीवन स्वर्णिम अक्षरों में लिखा जाता है, जो असंख्य जनमानस के जीवन को घने तिमिर से निकालकर उज्ज्वल प्रकाश से प्रकाशित कर देते हैं। ऐसे ही निरीह, निर्लिप्त, निरपेक्ष, अनियत विहारी एवं स्वावलम्बी जीवन जीने वाले युगपुरुषों की सर्वोच्च श्रेणी में नाम आता है दिगम्बर जैनाचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज का, जिन्होंने स्वेच्छा से अपने जीवन को पूर्ण वीतरागमय बनाया। त्याग और तपस्या से स्वयं को श्रृंगारित किया। स्वयं के रूप को संयम के ढाँचे में ढाला। अनुशासन को अपनी ढाल बनाया और तैयार कर दी हजारों संयमी युवाओं की सुगठित धर्मसेना। सैकड़ों मुनिराज, आर्यिकाएँ, ब्रह्मचारी भाई-बहिनें। जो उनकी छवि मात्र को निहार-निहार कर चल पड़े घर-द्वार छोड़ उनके जैसा बनने के लिए। स्वयं चिद्रूप, चिन्मय स्वरूप बने और अनेक चैतन्य कृतियों का सृजन करते चले गए जो आज भी अनवरत जारी है। इतना ही नहीं अनेक भव्य श्रावकों की सल्लेखना कराकर हमेशा-हमेशा के लिए भव-भ्रमण से मुक्ति का सोपान भी प्रदान किया है।

महामनीषी, प्रज्ञासम्पन्न गुरुवर की कलम से अनेक भाषाओं में अनुदित मूकमाटी जैसे क्रान्तिकारी-आध्यात्मिक-महाकाव्य का सृजन हुआ। जिस पर अनेक साहित्यकारों ने अपनी कलम चलायी परिणामतः मूकमाटी मीमांसा के तीन खण्ड प्रकाशित हुए। आपके व्यक्तित्व और कर्तृत्व पर लगभग ५० शोधार्थियों ने डी० लिट्०, पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की।

अनेक भाषाओं के ज्ञाता आचार्य भगवन् की कलम से जहाँ अनेक ग्रन्थों के पद्यानुवाद किए गए तो वहीं नवीन संस्कृत और हिन्दी भाषा में छन्दोबद्ध रचनायें भी सृजित की गई। सम्पूर्ण विद्वत्जगत् आपके साहित्य का वाचन कर अचंभित हो जाता है। एक ओर अत्यन्त निस्पृही, वीतरागी छवि तो दूसरी ओर मुख से निर्झरित होती अमृतध्वनि को शब्दों की बजाय हृदय से ही समझना श्रेयस्कर होता है।

प्राचीन जीर्ण-शीर्ण पड़े उपेक्षित तीर्थक्षेत्रों पर वर्षायोग, शीतकाल एवं ग्रीष्मकाल में प्रवास करने से समस्त तीर्थक्षेत्र पुनर्जागृत हो गए। श्रावकवृन्द अब आये दिन तीर्थों की वंदनार्थ घरों से निकलने लगे और प्रारम्भ हो गई जीर्णोद्धार की महती परम्परा। प्रतिभास्थलियों जैसे शैक्षणिक संस्थान, भाग्योदय तीर्थ जैसा चिकित्सा सेवा संस्थान, मूकप्राणियों के संरक्षणार्थ सैकड़ों गौशालाएँ, भारत को इण्डिया नहीं 'भारत' ही कहो का नारा, स्वरोजगार के तहत 'पूरी मैत्री' और 'हथकरघा' जैसे वस्त्रोद्योग की प्रेरणा देने वाले सम्पूर्ण जगत् के आप इकलौते और अलबेले संत हैं।

कितना लिखा जाये आपके बारे में शब्द बौने और कलम पंगु हो जाती है, लेकिन भाव विश्राम लेने का नाम ही नहीं लेते।

यह वर्ष आपका मुनि दीक्षा का स्वर्णिम पचासवाँ वर्ष है। भारतीय समुदाय का स्वर्णिम काल है यह। आपके स्वर्णिम आभामण्डल तले यह वसुधा भी स्वयं को स्वर्णमयी बना लेना चाहती है। आपकी एक-एक पदचाप उसे धन्य कर रही है। आपका एक-एक शब्द कृतकृत्य कर रहा है। एक नई रोशनी और ऊर्जा से भर गया है हर वह व्यक्ति जिसने क्षणभर को भी आपकी पावन निश्रा में श्वांसें ली हैं।

आपकी प्रज्ञा से प्रस्फुटित साहित्य आचार्य परम्परा की महान् धरोहर है। आचार्य धरसेनस्वामी, समन्तभद्र स्वामी, आचार्य अकलंकदेव, स्वामी विद्यानंदीजी, आचार्य पूज्यपाद महाराज जैसे श्रुतपारगी मुनियों की शृंखला को ही गुरुनाम गुरु आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज, तदुपरांत आचार्य

श्री विद्यासागरजी महाराज ने यथावत् प्रतिपादित करते हुए श्रमण संस्कृति की इस पावन धरोहर को चिरस्थायी बना दिया है।

यही कारण है कि आज भारतवर्षीय विद्वतवर्ग, श्रेष्ठीवर्ग एवं श्रावकसमूह आचार्यप्रवर की साहित्यिक कृतियों को प्रकाशित कर श्रावकों के हाथों में पहुँचाने का संकल्प ले चुका है। केवल आचार्य भगवन् द्वारा सृजित कृतियाँ ही नहीं बल्कि संयम स्वर्ण महोत्सव २०१७-१८ के इस पावन निमित्त को पाकर प्राचीन आचार्यों द्वारा प्रणीत अनेक ग्रन्थों का भी प्रकाशन जैन विद्यापीठ द्वारा किया जा रहा है।

आचार्य गुरुदेव ने 'डूबो मत, लगाओ डुबकी' की रचना १९८१ में की थी। इस काव्य संग्रह का मुख्य ध्येय संसार सागर में डूबना नहीं है किन्तु अध्यात्म सरोवर में डुबकी लगाकर उसका आनन्द प्राप्त करना है। ४२ मुक्त छन्द में रचित कविताओं के संग्रह रूप आपका यह द्वितीय काव्य-संग्रह है। अधिकांश कविताएँ विज्ञों के लिए सहज गम्य हैं, हाँ, कुछ कविता ही ऐसी हैं, जो कठिन हैं।

समस्त ग्रन्थों का शुद्ध रीति से प्रकाशन अत्यन्त दुरूह कार्य है। इस संशोधन आदि के कार्य को पूर्ण करने में संघस्थ मुनिराज, आर्यिका माताजी, ब्रह्मचारी भाई-बहिनों ने अपना अमूल्य सहयोग दिया। उन्हें जिनवाणी माँ की सेवा का अपूर्व अवसर मिला, जो सातिशय पुण्यार्जन तथा कर्मनिर्जरा का साधन बना।

जैन विद्यापीठ आप सभी के प्रति कृतज्ञता से ओतप्रोत है और आभार व्यक्त करने के लिए उपयुक्त शब्द खोजने में असमर्थ है।

गुरुचरणचंचरीक

'डूबो मत, लगाओ डुबकी' नाम की सार्थकता

'डूबो मत, लगाओ डुबकी' काव्य-संग्रह में ४२ कविताएँ हैं। इसका प्रथम संस्करण सन् १९८४ में मुद्रित हुआ था। इसका संज्ञाकरण, इसी में संग्रहित इसी नाम की कविता पर हुआ। इसकी प्रस्तावना '**अमृताक्षर**' नाम से स्वयं आचार्यश्री ने लिखा है, जिसमें इस कविता की रचना सम्बन्धी कारण एवं उद्देश्य को इस प्रकार स्पष्ट किया है-''अनुभूति की अनन्त धरती पर जो घटना घटित हुई, उसे आकार-प्रकार मिला, रूप मिला मूर्त शब्दों का। नामकरण हुआ 'डूबो मत, लगाओ डुबकी'। यह रचना आमूल-चूल परम शान्त रस से सिंचित है, संपोषित है। स्वयं ऊर्ध्वमुखी बन पड़ी है और पाठकों को ऊर्ध्वमुखी बनाने में साधकतम ही नहीं, आधारशिला भी है।''

कितना सार्थक नाम है? नाम पढते ही पाठक कृति के प्रति आकर्षित होता है। सामान्य सी बात है कि कोई नदी, सरोवर में है तो उसे यह ध्यान रखना कि मुझे डूबना नहीं है किन्तु सरोवर में डुबकी लगाने का आनन्द प्राप्त करना है। इसी प्रकार साधक को संकेत है कि संसार सागर में डूबना नहीं है किन्तु अध्यात्म सरोवर में डुबकी लगाकर उसका आनन्द प्राप्त करना है। कृति में आचार्यश्री ने अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए सुन्दरभाषा एवं श्रेष्ठ शब्दावली का प्रयोग किया है। अध्यात्म का गहरा रंग को शब्दों में गढ़ा है। उनकी कविता के मर्म को जो उसी प्रकार समझना चाहते हैं तो उन्हें भाषा की गहराई में डुबकी लगानी पड़ेगी। आओ: हम सभी एक बार इन महान् कवि के काव्योदधि में डुबकी लगायें और परमानन्द की प्राप्ति करें।

इसमें भावों का प्रस्फुटन निसर्गतः हुआ है, कवि ने काव्यशास्त्रीय साँचे में ढालने का प्रयत्न नहीं किया। इसके रचयिता एक ऊर्ध्वचेता दिगम्बर जैन मुनि हैं तथा उसकी अन्तरात्मा ही शब्द साँचे में ढल गई है।

इसका उद्देश्य भी चैतन्य की उपासना है। इसमें असार का त्यागकर सार की छवि छिड़काई गई है, जो मुमुक्षु की श्वाँस-श्वाँस के तारों में सरगम की चमक भरती है। इसमें न प्रदर्शन की कामना है और न दिग्दर्शन की भावना; किन्तु तलस्पर्शी आत्मदर्शन की चाहना है। कविता तो संवेदनशील कवि की स्वानुभूतियों से हिल्लोलित भावतरंगों का सजीव चित्रण है। उसकी न कोई भाषा होती है और न परिभाषा, न उसका कोई रंग, न संग।

कविता यदि स्वानुभव से वंचित हो और परानुभव से सिंचित हो तो कवि न चिदानन्द को प्राप्त कर सकता है और न किसी को दे सकता है। भावहीन, केवल शब्दों द्वारा अलंकृत कविता चेतना-तृषा को परितृप्त नहीं कर सकती। स्वानुभव ही कविता में प्राण फूँकता है, यही तो कविता का उपादान है; अतः पाठक को भाव-गाम्भीर्य में ही डुबकी लगानी पड़ेगी। इस संग्रह का नाम ही यह संदेश देता है कि कविता का रसास्वाद लेने के लिए उसमें डूबने की आवश्यकता नहीं है, डुबकी लगाने की आवश्यकता है। डूबकर तो स्वयं को खो देना है, मुक्ता कहाँ पा सकेगा, हाँ डुबकी लगाकर ही अन्वेषण द्वारा रत्नों का अधिकारी हो सकता है।

इसमें सभी कविताएँ अध्यात्मपरक हैं। संसार एक अपार सागर है, जो अज्ञानान्धकार से आच्छन्न है। इसमें जीव अनादिकाल से तैरता-तैरता श्लथ हो गया है। यद्यपि आस्था का सम्बल है, किन्तु धैर्य टूटता जा रहा है। अन्दर से एक ध्वनि उठती है-प्रभो! प्रभात के दर्शन हों। काश! इस बृहदाकाश में मेरे चिदाकाश का परम विकास होता, रूप-रसातीत ज्ञान का परम प्रकाश होता तो धन्य हो जाता। इस संसार में पर का आलम्बन, पर का सम्बल केवल दुःखकर है, इसीलिए यह जीव सिर पर कर्म-घट का भार लादे भव-वन में भटक रहा है, किन्तु उसे सुख का लेश भी प्राप्त नहीं। अज्ञान संध्या में विगतकाम घनश्याम खड़े हैं, परन्तु अन्धकारवश दृष्टिगोचर नहीं होते। अरे! हौले-हौले उनसे बात कर ले और अपना मल धोले।

जीव अनागत के आकाश में लालसा-वश जी रहा है, जिसका न

कोई आधार है और न जो किसी का आधार है। वह तो निषेधरूप है, अभावरूप है, वह एक अथाह गर्त है, जिसकी उपेक्षा से लोग सनाथ बनते हैं और अपेक्षा से अनाथ, वह संवेदनहीन भी है। विगत इस बात को सुझाता है, परन्तु उसे सूझता ही नहीं। अतः विगत-अनागत से सम्बन्ध-विच्छेद कर सत्-चित्-आनन्द-धाम पूर्णकाम का, जो आगत-विद्यमान है, स्वागत करना चाहिए। किन्तु यह तभी संभव है, जब निर्वसना वासना का त्याग कर जीव अपनी उपासना में खो जाए। यहाँ "ज्ञान ही दुःख का मूल है और ज्ञान ही भव का कूल है, वह राग सहित प्रतिकूल है और राग रहित अनुकूल।" इन दोनों में से समुचित को चुनना है क्योंकि समस्त शास्त्रों का सार यही है कि समता बिन सब आँखों में धूल है।

जीव को सोचना चाहिए कि हे अपरिमेय! मुझ अबोध में वह शक्ति भर दो, जिससे ज्ञान-विज्ञान का नेत्र खुल जाए और मैं पर का अनुचर न रहकर स्व का अनुचर बन जाऊँ। जिस प्रकार बादल-दल से 'दल-दल' बन जाता है और जिसे लखकर धरती का दिल हिल जाता है, उसी प्रकार जीव का हृदय भी संसार के दलदल से सभय रहता है। अधुनातन विश्व-व्यापार में जो कुछ घटित हो रहा है, वह उत्पाद-व्यय रूप में स्वचलित है, स्वतंत्र है। पदार्थ ध्रौव्यरूप है परन्तु जीवों में इस परिवर्तन को देखकर कुछ लोगों ने मान लिया है कि इसका कर्ता ईश्वर है जो असत्य है क्योंकि दृश्यमान पुद्गल है, वह अचेतन है और ईश्वर चेतन है चेतन से अचेतन का उद्भव असंभव है। फिर सुख-दुःख की विभिन्नता से वह अन्यायी भी सिद्ध होगा और यह कहना भी कि वह शुभाशुभ कर्मानुसार फल देता है, यथार्थ नहीं है क्योंकि यदि कर्मानुसार वह फल देता है तो कर्म ही प्रधान रहा, ईश्वर की क्या आवश्यकता है-

चेतन से अचेतन का उद्भव
कैसा हो सम्भव!
क्या सम्भव है कभी...?
बोकर बीज बबूल

पाना रसाल?
कर्ममात्र से काम हो रहा
ईश्वर फिर किस काम आ रहा

वास्तव में प्राणी जन्म-मरण, सुख-दुःख आदि स्वकर्मानुसार ही प्राप्त करता है-

निज कृत विधि-फल
पाता प्राणी
अज्ञानी।

सन्त तुलसीदास ने भी लिखा है-

''निज कृत करम भोग सबु भ्राता।''

जो कुछ घट रहा है, वह पर्याय है, जो नश्वर है। अनश्वर तो सत् है द्रव्य है। वही स्व का धाता-विधाता है, पालक-पोषक है, वही त्राता-विष्णु है और वही संघाता शिव है-

सत् ही धाता विधाता है
पालक पोषक निज का निज ही
सत् ही विष्णु त्राता है
प्रलय-पताका
सत् ही शिव संघाता है।

सद्‌गुरु या जिनेन्द्र के दर्शन पाकर कुटिल दृष्टि चरणों में झुक जाती है। यह कैसा विलक्षण परिवर्तन हो जाता है। भक्त को ऐसा भासित होता है कि महासत्ता की 'पीयूष भरी आँखों' से चिदानन्दिनी शरद चाँदनी झर रही है और वह निर्निमेष उसे देख रहा है। परन्तु इतना होने पर भी सदुपयोग का उपभोग न कर जब पूर्णकाम नहीं होता तो प्रार्थना करता है, कि हे घनश्याम! मुझे भी अपने जैसा अनन्त 'हो जाने दो'। प्रत्युत्तर न आने पर फिर अपनी चंचल चेतना से कहता है, अरी! तू तो अपनी है, मेरे पुरुष की अवचेतन को सानन्द अनन्त काल तक ''सो जाने दो''-

हे घनशाम
तुम सा अनन्त
इसे भी
हो जाने दो
अब पुरुष को
सानन्द अनन्त काल तक
सो जाने दो।

हे चेतना! तू चञ्चलता छोड़ और अपने स्वरूप में आ। मैं शून्य में भटक रहा हूँ। ऐसी स्थिति में भक्त जीव कितना दैन्य दिखाता है, विलखता है और सिर को धुन-धुन कर अनुनय-विनय करता है।

चेतना ने कहा ठीक है, वहाँ जाना चाहते हो, जहाँ भगवान् विराजित हैं पर उस मन्दिर का तो चूल-शिखर गगन चूम रहा है और प्रवेशद्वार भू चूम रहा है, हे अश्वारोही! मान-तुरंग से नीचे तो उतरो, मानापमान का अवसान तो करो अन्यथा वहाँ जाना बहुत विकट है। चेतना की इस चेतावनी से प्रतिबुद्ध हो जीव ने सोचा कि मैंने अज्ञान-अमा की ''निशा में निर्णय लिया'' कि मैं ही प्रकाश पुञ्ज हूँ, परन्तु ज्ञान के पौर्णिम ज्योतिर्मय चन्द्रमा को देखकर लग रहा है, कि मैं तो खद्योत हूँ।

प्रकृति के प्यार और रंगीन राग ने चिदम्बर पुरुष को पाखण्डी बनाकर बहुरूपी 'चितकबरा' बना दिया है। 'पल-पल पलटन' शील है जग और जग के पदार्थ, अरे जीव! क्यों हाथ मलता है, अमरता पानी है तो संयम लाना पड़ेगा। तेरा त्रैकालिक परिणमन और महासत्ता में चिरसत्ता, फिर मेल कैसा? जब तक तुझे आत्मीय अव्यय वैभव का अनुपम अनुभव नहीं होगा तब तक तेरी लघु सत्ता उस परम सत्ता का रूप नहीं ले सकती महासत्ता की चौंध 'बिजली की कौंध' के समान है, जिससे लघुसत्ता का प्रकाश मन्द पड़ जाता है, अतः साधक का पूर्ण समर्पण अपेक्षित है। वीतरागी के चरणों में रागी अलि के समान भक्ति पराग-पिपासु बन कर नमन करना ही श्रेयस्कर है।

सन्त कवि जीव के माध्यम से अपनी चितिजननी से प्रार्थना करता है कि हे 'मन्मथ मथनी!' मुझे परपदार्थ में नहीं रमना है। अत: मैं अक्षतवीर्य ही रहूँ, रमणीरमण न बनूँ, क्योंकि इससे मैं तुम्हारी सेवा से वंचित रह जाऊँगा। हे रति-हननी! मेरी तो यही इच्छा है

रति, रति-पति के प्रति
मति में रति-भाव
हो न सके प्रादुर्भाव
बस!
इस मति की रति
विषय-विरति में
सतत निरत रहे।

यह जीव संसार-सागर तट पर बैठा उसमें उठती लहरों में मन रचा-पचा कर, उन्हें निहारा करता है, पर उसे पता नहीं कि ये लहर जहर हैं-

उसी जहर से
अपना गागर
भरता जाता, भरता जाता
यह संसार
प्रहर-प्रहर पर
मरता जाता
मरता जाता...यह संसार।

यह जीव एक गुलाब का पौधा है, जिस पर स्वजन पुष्प खिले हैं, जिनमें सुन्दर मकरन्द है, परन्तु आज वह पौधा खेद खिन्न है, क्योंकि उसकी जड़ में मोह का कीड़ा लगा हुआ है, जो उसे तिल-तिल काट रहा है, जिससे पुष्प मुरझा गया है और मकरन्द शुष्क होने से अलिगण लौट रहा है। वह जीव ईश्वर से कहता है कि हे प्रभो! तुम राकेन्दु हो, सुधासिन्धु हो, अतएव तुम्हें देख-देखकर समग्र सत्ता-सिन्धु उमड़ रहा है, नयन-

कुमुदिनी मुदित हो रही है और चेतन-चातक शीतल चाँदनी का पान कर रहा है तथा मनरूपी चन्द्रकान्त मणि से सलिल सीकर बरस रहे हैं। जीव का स्वरूप 'पारदर्शक' है, उसी में झाँकने से चिदानन्द प्राप्त होता है। दुग्ध में झाँकने से क्या? घृत तो उसमें अन्तर्निहित है। दुग्धरूप बाह्य जगत् की चकाचौंध जीव को अन्दर दृष्टि नहीं डालने देता इसीलिए घृतरूप आत्मानन्द की उपलब्धि नहीं होती, जो शाश्वत सार है। 'मन की भूख मान है, जो कभी नहीं मिटती और उसके न मिटने से परम सत्ता का भास नहीं होता, उसका आभास तो मार्दव-भाव से ही मिलेगा।

जीव के हृदयाकाश से जब 'विकल्प-पंछी' उड़ जाते हैं, तो समता की अरुणिमा ध्रुव की ओर बढ़ती जाती है, स्नेहिल भावों की श्रद्धाञ्जलियाँ चढ़ने लगती हैं, तथा दृष्टि-सम्पदा स्वयं में ही गढ़ने लगती हैं। एक स्थिति आती है जब जीव को पूर्ण ज्ञान हो जाता है और वह जिनवर बन जाता है। उसके ज्ञान में असंख्य 'प्रतिछवियाँ' उसी प्रकार प्रतिबिम्बित होती रहती है, जैसे दर्पण में पदार्थ; किन्तु वे न तो आत्मा के भावरूप बनती हैं और न विभाव रूप-

जैसे ही वह
सम्मुख दर्पण
विविध पदार्थ
अपने-अपने
रूप रंग, अंग, ढंग
करते अर्पण
दर्पण में
...पर...वह
क्या विकार झलकता?
क्या? तजता दर्पण
आत्मीयता उज्ज्वलता?
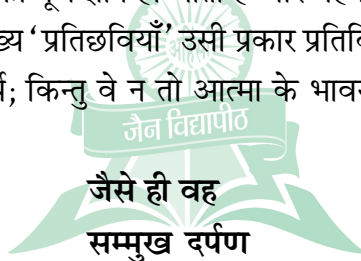
सिन्धु में असंख्य बिन्दु हैं, परन्तु सभी स्वतंत्र हैं, बिन्दु सिन्धु का

अंश नहीं है, वही अंशी है और वही अंश है, स्वयं का आधार-आधेय वही है–

किन्तु बिन्दु
अंश अंशी स्वयं हैं
स्वयं का स्वयं आधार आधेय...
पर निरपेक्षित जीवन जीता है।

इसी प्रकार ज्ञान में प्रतिच्छायित पदार्थ आत्मा के अंश तो हैं ही नहीं, परस्पर भी अंश-अंशी नहीं हैं, वरन् प्रति सत्ता स्वाधीन है। 'दर्पण में दर्प न' ही है और कुछ नहीं, उसमें दृश्यमान पदार्थ तो स्वयं की ही छाया है, भ्रम है और भ्रम ब्रह्म नहीं हो सकता। अतः मुमुक्षु जीव सोचता है, कि वह यह सब कब भूले, अन्तर्जगत् में ही रमण करे तथा बाह्य जगत् में न आकर द्वैत को त्याग अद्वैत की आराधना करे। अद्वैत की भक्ति में लीन व्यक्ति पक्षपाती नहीं होता, क्योंकि वह जानता है कि ''पक्षपात पक्षाघात है।'' पक्षपात का प्रभाव मन पर होता है तथा उससे मुख की आकृति एक देश विकृत हो जाती है। पक्षाघात का भी प्रथम तन पर और पुनः मन पर प्रभाव पड़ता है, सब कुछ विकृत हो जाता है। रसनादि इन्द्रियाँ पक्षपात की जननी हैं।

कवि पूछते हैं कि यह जीव कितना पागल है कि रेत से तेल निकालना चाहता है, जबकि वह तिल से निकलता है और नीर से नवनीत निकालना चाहता है, जबकि वह क्षीर से निकलता है।

मुक्तिरमा ऐसे अविवेकी पागल को नहीं वरती, वरन् उसे ही स्वीकारती है, जो संयमी है। जैसे 'भीगे पंख' वाली मक्षिका उड़ नहीं सकती, वैसे ही रागादिक की चिकनाहट और पर का सम्पर्क जीव को स्वतंत्र नहीं होने देता। मदनमोहिनी चिति की भगिनी मति भला 'प्राकृत पुरुष' को कैसे पहचान सकेगी, जबकि वह मुक्त है, स्व में-प्रकृति में-ही निमग्न है और स्वयं पर में।

अन्त में भक्त-कवि अपने को मयूर मानकर कहते हैं कि हे नाथ!

अब तक मैंने संसार में अमृत को त्यागकर गरल ही पिया है, इसलिए मेरे अंग-अंग में नीलिमा समा गई है, अब कृपा करो और सुधा वर्षा कर मुझे परमहंस बना दो।

यह काव्य संग्रह विशुद्ध परिणामों से तो ओत-प्रोत है ही, उनकी उत्तुंग विराटता भी इसमें परिलक्षित होती है। इसकी भाषा में लालित्य है, धाराप्रवाह भी है, परन्तु पूर्व संग्रह की अपेक्षा सरल है। अधिकांश कविताएँ विज्ञों के लिए सहज गम्य हैं, हाँ, कुछ कविता ही ऐसी हैं, जो कठिन हैं। उपर्युक्त विवेचन से हम इनके सौन्दर्य और भाव-गाम्भीर्य को समझ सकते हैं।

कहीं-कहीं तो ऐसा प्रतीत होता है कि कवि की आत्मा ही उमड़-घुमड़ पड़ी है तथा भाव-समुद्र सीमा बाँध कर फूट पड़ा है। जैसे तरंग पर तरंग चली आती है, वैसे ही भाव पर भाव उद्गत होते हैं। जैसे पात में से पात निकलते हैं, उसी प्रकार बात में से बात निकलती जाती है। साथ-साथ पाठक का मन भी तरंगों पर तैरता हुआ पूर्ण आनन्द लेता है। इसके लिए आगत-स्वागत, प्रलय-पताका, अंतिम माता, पल-पल पलटन, मन्मथ मथनी, राकेन्दु, पारदर्शक, प्रतिछवियाँ, पक्षपात और प्राकृत पुरुष कविताएँ पठनीय हैं। इनमें काव्य-सौन्दर्य भी है और भाव-गाम्भीर्य भी।

❑ ❑ ❑

अनुक्रम

भोर की ओर

कब से आ रहा हूँ
अपार सागर में
तैरता–तैरता
हाथ भर आये हैं
श्लथ!
नैर्बल्य की अनुभूति
अब ओर नहीं
छोर मिले!!

चारों ओर
भ्रमर–तिमिर
फैला है
फैलता जा रहा है
चरण चल रहे
साथ आस्था है
साफ रास्ता है
पर
धृति कहती है
अब घोर नहीं
.....भोर मिले!!!

❑❑❑

काश!

हे आकाश!
काश !...
नहीं देता तू
इस लघुतम सत्ता को
अपने में
अवकाश!...
अपने पास!!

किस विध सम्भव था ?
चिदाकाश का
अप्रत्याशित
सौम्य-सुगंधित
मृदुतम विलास
परम विकास!...

रूप रसातीत
स्फीत प्रतीत
परम प्रकाश!
हे महदावास!
हे आकाश!

❑❑❑

हौले-हौले

यह यथार्थ नहीं है
इसलिए
परमार्थ भी नहीं है
आर्त है केवल
पर का आलम्बन
पर का सम्बल!

ऐसी स्थिति में
कैसे उपलब्ध हो
स्वार्थ!
यही एक परिणाम हुआ है
कि
शिर पर ले अघ मटका
भव वन में मन भटका
चहुँ गतियों में अटका
मिला नहीं सुख घटका

कब तक तू जीयेगा
पराश्रित जीवन
कब तक ना पीयेगा
पीयूष पी बन...
..... संजीवन
जीना क्या ? ना चाहेगा
.....चिरंजीवन

कब तक पय में
विष घोलेगा
कब तक चंचल
........डोलेगा

जहाँ खड़ी है शाम
वहीं खड़े निजशाम!
विगतकाम...
..... घनशाम

कब तो इन पर
दृग खोलेगा ?
कब इन से सरस बोल वे
..... बोलेगा ?
उनकी दृष्टि तुला पर
अपनी समग्र सत्ता
कब तौलेगा
कब तो उन के...
..... पीछे-पीछे
हौले-हौले
हो लेगा!! हो लेगा!! हो लेगा!!!

हो लेगा तो निश्चित है यह
अपना मल सब
धो लेगा!! धो लेगा!! धो लेगा!!!

❑❑❑

आगत-स्वागत

समय-समय पर
शून्य में से
अनागत का अपना
निरा सन्देश
प्रचारित-प्रसारित हो रहा है
..... गुप्त रूप से!
कि
'ज्ञात रहे'
ऐसा कोई नहीं है
आवास! मेरे पास!
नहीं पा सकोगे मुझ में
अवकाश! हो विश्वास!

नहीं कर सकोगे मुझ में
पलभर भी
वास! विलास!...
मेरा कोई विधिरूप-जीवन नहीं है
निषेध की सत्ता से निर्मित...
..... जीवन जीता हूँ

मेरे पैरों के नीचे
धरती नहीं है
निराधार 'हूँ' था,
कैसे दे सकता हूँ ? निराधार हो
आधार औरों को!

नीचे की ओर लम्बायमान

....................दण्डायमान

दोनों हाथ

नहीं है मेरे मस्तक पर

अवकाशदाता

आकाश का हाथ

ना है कोई साथ

...........मैं अनाथ!

चारों ओर निरालम्ब

सब अनाथ

सनाथ बनते हैं

मेरी उपेक्षा करने से

अनाथ बनते हैं

अपेक्षा करने से

मेरा दर्शन किसी को होता नहीं

होता भी हो .....तो

व्यवहार! उपचार!...

दिव्य ज्ञानी को भी

मेरा साक्षात्कार नहीं

मैं एक अथाह गर्त हूँ

मुझ में भरा है केवल

अभावात्मक आर्त ही आर्त

पिपासा बुझाने

जिसमें

आशा झाँकती है

बार! बार!!

खाली हाथ लौटती
निराश हुई आशा की पीठ
अनिमेष निहारता रहता हूँ
यही मेरी विशेषता है
मैं अनागत, नहीं तथागत!

और विगत की घटना
मौन
किन्तु
तुझे इंगित कर रही है
अपने इंगनों से
अरे! मन!
उसकी चपेट में आकर
मत पिटना
अमित बल को खोकर
अनेक भागों में
मत बँटना!

संवेदन से शून्य है वह
भाव की परिणति
अभाव में परिवर्तित
वह अपना
बन चुका है सपना
असंभव बन चुका है
अनुभव से
उसका नपना!

संभव है केवल
अब उसका
शब्दों में जपना!

जिस जपन की वेला में
अनुभूति का स्रोत
ढक जाता है सहज
अघ के कणों से
अवचेतन के रजोगुणों से
और यही हुआ है
भवों–भवों से
युगों–युगों से

अरे! मन
विगत की घटना से
पल भर तो
हट ना! हट ना!! हट ना!!!

विगत में
समता रस से आपूरित
क्लान्ति निवारक
शान्ति प्रदायक
ओ 'घट' ना! ओ 'घट' ना!! ओ 'घट' ना!!!
अरे मन
भूल जा
ओ घटना! ओ घटना!! ओ घटना!!!

इसलिए हो जा
अरे मन!
विगत से, अनागत से
पूर्ण रूप उपराम!...

अन्यथा और कहीं खोजा
सत् चित् आनन्द-धाम
यदि अनुभूत होगा
तो वह है निश्चित
एक ललित ललाम
..........पूर्ण काम!
विरत काम!
आगत! आगत!! आगत!!!
यही है मुख्य अतिथि
महा अभ्यागत!
सदा जागृत
चिर से अब तक तुझ से
अनपेक्षित है अनादृत।
प्रतीक्षा से
भिक्षा से
शिक्षा से भी परे
अप्रमत्त ईक्षा की पकड़ में
केवल आता है
आगत! आगत!! आगत!!!
इसी का आज
स्वागत! स्वागत!! स्वागत!!!

❑❑❑

खो जाने दो

अरी! वासना
यथा नाम तथा काम है तेरा
तुझमें सुख का
निवास वास ना!
तुझमें गहराई है कहाँ ?
और मैं
गहराई में उतरने का
हामी हूँ
चंचल अंचल में
केवल लहराई है
तेरे आलिंगन में
मोहन इंगन में
सुख की गन्ध तक नहीं
मात्र सुख की वासना है
जो ओढ़ रखी है तूने
जिसमें सारी माया ढकी है
इसलिए इसे
अपनी उपासना की
अनन्त सत्ता में
खो जाने दो
ओ! वासना!

❑❑❑

आँखों में धूल

ज्ञान ही दु:ख का
.......मूल है,
ज्ञान ही भव का
....कूल है।
राग सहित सो
प्रतिकूल है,
राग सहित सो
अनुकूल है,
चुन चुन इन में
.......समुचित तू
मत चुन अनुचित
भूल है।
सब शास्त्रों का
सार यही
समता बिन सब
धूल है।

❑❑❑

मेरा सहचर मैं

हे अपरिमेय!
अजेय सत्ता!
इस
नादान असुमान को
ऐसी शक्ति प्रदान कर दो
इसमें
ज्ञान-विज्ञान
प्रमाण भर दो
जागृत प्राण कर दो
लोकालोक
दिव्यालोक
विगतागत का
संभावित का
सिंहावलोकन कर सकूँ
युगपत्
युगों-युगों तक
कण-कण के
परिचय का
अणु-अणु के
अतिशय का
अनुपान कर सकूँ जी भर!
अन्यथा इसमें
ऐसा मान स्वाभिमान
आविर्माण कर दो
जिससे वह
किसी भी काल में

किसी भी हाल में
तन से, मन से
और वचन से
पर का अनुचर
नहीं बने
निज का सहचर
सही बने, अमर बने

आगामी अनन्त काल तक
निजी मान के आस्वादन में
रहे सने! मोद घने!
ओ! अपरिमेय...
अजेय सत्ता!

❑❑❑

आया दल-दल

पृथुल नभ-मण्डल में
अकाल-विप्लव-धर्मी
सघन, श्यामल
बादल-दल
पिघल-पिघल कर
उज्ज्वल शीतल
धवलिम जल में
बदल गया है।

इसे निरख कर
धरती दिल
हिल गया है,
मन में विचार।
भविष्य का विषय
गहल-भाव में ढला
भला-बुरा अज्ञात
यह युग
मुझे तिरस्कृत करेगा
पद दलित करेगा
दल-दल आ गया है

❑❑❑

प्रलय - पताका

चराचरों का संकुल
चलाचलों का कुल
यह निखिल
खुल, खिल
पल, पल
अविरल अविकल
गल-गल
नव-नूतन
अधुनातन
आकार-प्रकारों में
निर्विकार विकारों में
प्रतिफलित हो रहा है
स्वयं
था/होगा/त्रैकालिक

जो रहा है
पर!
इस प्रतिफलन की गोपनता
मोहाकुल व्याकुल चेतन के
आचार-विचारों में
फलित कब हुई है ?
इसलिए तो
यह साधारण
जन-गण-मन
निर्णय कर लेता है
कि
विशाल निखिल का

आखिर!
स्रष्टा कौन होगा ?
सकल साक्षात्कार
द्रष्टा मौन होगा
वही ईश्वर, अविनश्वर ना!
शेष सब गौण होगा
किन्तु यह निर्णय
सत्य रहित है
तथ्य रहित है
पूर्ण अहित है

केवल कल्पना है
केवल जल्पना है

क्योंकि
चेतन से अचेतन का
उद्भव...!
कैसा हो सम्भव...!
क्या सम्भव है ? कभी...!

बोकर बीज बबूल
पाना रसाल...
.....रसपूर
भरपूर

और क्या कारण है ?
ये ईश्वर!
किसी को बनाते नर
किसी को बनाते किन्नर
मतिवर, धीवर, वानर

जबकि वे
अदय नहीं है
सदय 'हृदय'
अभय निधान
हैं भगवान।
सबको बनाते...!
एक समान
या भगवान
अपने समान

जिसका जैसा हो परिणाम
धर्म-कर्म-काम
तदनुसार ही
ये ईश्वर
इन चराचरों को
दिखाते हैं
नरक-निवास
स्वर्ग-विलास
नर-पशु-गति का त्रास...!

यह कहना भी
युक्ति-युक्त नहीं है
कारण!
कर्म-मात्र से काम हो रहा
ईश्वर फिर किस काम आ रहा ?

'माता-पिता तो
सन्तान के कर्ता हैं'
यह धारणा भी
नितान्त भ्रान्त है

केवल ये भी 'विभाव-भाव के
काम-भाव के'
कर्ता हैं...
अन्यथा कभी-कभी
कुछेक
सन्तानहीन क्यों ?
वन्ध्या...
रोती क्यों ?
त्रिसन्ध्या...?

सही बात यह है
कि,
जननी-जनकज
रज-वीरज के
मिश्रण-निर्मित
नूतन तन तब धरता है
आयु-पूर्ण कर
जीरण शीरण
पूरव तन जब तजता है
निज कृत विधि-फल
पाता प्राणी
अज्ञानी!

यथार्थ में
प्रति पदार्थ में
सृजन-शीलता
द्रवण-शीलता

परनिरपेक्ष
शक्ति-निहित है
जिसके अवबोधन में
हित निहित है

इसलिए
विगत–भाव का
विनाश वाला
सुगत–भाव का
प्रकाश वाला
सतत शाश्वत
ध्रौव्य–भाव का
विलासशाला
सत् है।

चेतन हो या अचेतन
तन, मन हो या अवचेतन
सब ये सत् हैं
स्वयं सत् हैं

सत् ही धाता विधाता है...
पालक–पोषक निज का निज ही
सत् ही विष्णु त्राता.....है
प्रलय–पताका
सत् ही शिव संघाता है।

इसलिए अब
तन से, मन से
और वचन से
सत् का सतत
स्वागत है, सुस्वागत है।

❑❑❑

दृष्टि झुकी चरणों में

चपला हरिणी दृष्टि
अबला हठीली
बाहर सरला तरला
भीतर गरला गठीली
ऊपर सौम्य छबीली
.....सुन्दर...
कुटिल कुरूप कटीली
अन्दर...!
पर! आज पूर्ण परिवर्तन

प्रतिलोम चाल चलती
यह एक बहाना है
चरण रज सर पर चढ़ाती
मौन कह रही

आज हुआ भला
जीवन को अर्थ मिला
जो कुछ था व्यर्थ, टला
व्यष्टि से दृष्टि हटी
समष्टि का पान करती
गुण-गान करती

करती सक्रिय चरण की पूजन
क्रियाहीन को क्रिया मिली
दृष्टि को मिली
चरण-शरणा
निरावरणा
निराभरणा।

❑❑❑

पीयूष भरी आँखें

अपरिचित होकर भी
परिचित-सी लगती है
अतल सागर सत्ता से निकली
इधर...
मेरी ओर एक
सजीव लहर आ रही है
हर क्षण, हर पल
अश्रुत-पूर्व
श्रुतिमधुर गीत
गहर गहर कर गा रही है
वासना की नहीं
उपासना की रूपवती मूर्ति
मेरे लिए
पीयूष भरी
आँखें लिए
जहर नहीं
महर ला रही है।
देखो ना!
मोह-मेघ की महाघटायें
दुर्वार घूँघट
पूरी शक्ति लगा
चीरती चीरती
चिदानन्दिनी
शरद चाँदनी
नजर आ रही है!

❑❑❑

हो जाने दो

सत्ता पलट तो गई
भोग का वियोग हुआ
योग का संयोग हुआ
किन्तु उपयोग का!
उपयोग कहाँ हुआ ?
भोक्ता पुरुष ने
उपयोग का उपभोग नहीं किया
मात्र परिधि पर...
परिणाम हुआ है बस!
अभी केन्द्र में
सूम्-साम है, शाम है
हे! घनशाम तुम-सा अनन्त
इसे भी
हो जाने दो...!

❑❑❑

सो जाने दो

ओ री! ललित लीलावती
चलित शीलावती
भ्रमित चेतना!

जब से तेरा
क्रीड़ास्थल
बाहर से आ भीतर बना है
तबसे
पुरुष की पीड़ा
और घनीभूत हुई है

मानो मस्तिष्क में
काट रहा हो
पड़ा पड़ा एक कीड़ा
इसलिए निवेदन है
अब पुरुष को
सानन्द अनन्तकाल तक
सो जाने दो!

❑❑❑

अंतिम माता

ओ माँ!
सार्वभौमा
भली कहाँ गई तू!
चली!
इसे विसार छोड़कर
निराधार

इधर यह
भटक रहा है
इधर उधर
गली गली
तुझे ढूँढ़ता कहाँ है वह
गूढ़ता निगूढ़ता
अकेला बावला बन
जिधर जिधर

दृष्टिपात किया
उधर उधर
शून्य! शून्य!! शून्य!!!
केवल शून्य!

क्या शून्य में लुप्त गुप्त हुई ?
किधर गई किधर देखूँ ?
अधर में मुझे मत लटका!
हे! अधर-पथ-गामिनी
मौन मुस्कान
कम से कम
दिखा दे
अधर पर

अमूर्त केन्द्र की ओर
अमूर्त इन्द्र को
गतिमान प्रगतिमान
होने की
विधि दिखा दे
या

मौन सांकेतिक
भाषा में वह
लिखा दे
हे अनन्त की जननी!
अनन्तिनी!
अनन्तकाल के लिए
अपने अविचल अंक में
आश्रय दे
इसे बिठा ले

यह समय, अभय हो
पल्यंक-आसन लगा
उस अंक में
शीतल शशांक-सा
पर! अशंक
आत्माभिभूत हो सके

इस में अनावरण का वातावरण
आविर्भूत हो सके
पूतपना
प्रादुर्भूत हो सके
हो सके।
इतनी कृपा कर देना।

कौन-सा पथ है तेरा
जिस पथ पर चिह्नित
पद-चिह्नों को
कैसे चिह्नूँ ?

यह पूरा श्लथ है
अंश!...
अपने वंश से
अज्ञात! परिचित कहाँ है ?
अनाथ है
अपने अंश को
कम से कम
अपने वंश का
ज्ञान करा दे!

अनुमान करा दे माँ!
हे! अंशवती!
हे! हंसमती!
सोमाँ!...
ओ माँ!
ओ! चाँदनी!
चिदानन्दिनी!

यह चेता
चातक!...
चारु चरित से
चलित विचलित
हो गया है
चिर से
इसे कब फिर से!.....वह

शरद धवल
पयोधर-सी
पावन पूत
हे! पयोधरा!
पयोधर पिला

पूत को पुष्ट नहीं बनाओगी
अभिभूत...!
पूत .... कब बनाओगी ?
हे! विमल यशोधरा
हे! पयोधरा
भाँति भाँति के/भावों से
बार बार यह
बालक, माँ!

बाधित न हो
रहे अबाधित
सदा भावित
शीतल अंचल में
छुपा ले इसे...!
भोले बालक को
हे! जगदम्बा!

बहु भावों से
भावित-भाल तेरा
कृपा-पालित कपाल तेरा
सब इंगनों का
अंकन! मूल्यांकन...!
कठिनतम कार्य है माँ...!
यह निर्बल मन मेरा

बंकिम है
शंकित है
अंतिम भंगिम।...
भाल पर
उन इंगनों को
कैसा ...... ? कब ?
कर पाता .... अंकित

हे! आदिम अन्तिम माता!
प्रमाता की माँ!
अतल दर्शक
दर्शक हर्षक
तरल सजीव
करुणा छलकती
नयनों में
अपलक

एक झलक
बिलखते-बिलखते
नयनों को
लखने दे
परम करुणा रस को
भाव से
और चाव से
चरचर, चरचर
चखने दे

ओ चेतना!
ध्रुव केतना!
मम ता .... ऽऽऽ मम ता
ओ ममता की मूर्ति
मत छोड़ना मम ममता।

❑❑❑

भू-चुम्बी द्वार

प्रभु के
विभु त्रिभुवन के
निकट जाना चाहते हो तुम .....!
उस मंदिर में जाने,
टिकट पाना चाहते हो तुम...!
वहाँ जाना बहुत विकट है
मानापमान का
अवसान! अनिवार्य है, सर्वप्रथम...!
वहाँ विराजमान हैं भगवान!
जिस मंदिर का
चूल शिखर!
गगन चूम रहा है
और प्रवेश द्वार...
धरती सूँघ रहा है
वहाँ जाना बहुत विकट है।

❑❑❑

निर्णय लिया निशा में

विपरीत रीत

बनी दशा में

अमा की

घनी निशा में

स्वयं को देखा था

कि मैं अकेला

प्रकाश पुँज हूँ

ललाम हूँ

शेष सब

शाम शाम

किन्तु ज्ञात हुआ

आज! पौर्णिमा

केवल आप हो

उद्योत इन्दु!

और यह टिम टिमाता

खुद खद्योत है।

❑❑❑

चितकबरा

प्रकृति के प्यार ने
रंगीन राग ने
अरूपी पुरुष को
चिदम्बर को

न केवल...
..... पापी पाखण्डी
और रूपी बनाया है
परन्तु

पुरुष की परख करना भी
कठिन हो गया है आज!
बहुरूपी बनाया है
चितकबरा
बेशक!...

❑❑❑

पल-पल पलटन

हे! अमरता
हे! अमलता
समलता का जीवन जीता
असह्य सहता

विरह वेदना
युगल कर तल
मलता मलता
मरता मरता
बचा है क्षीणतम श्वास
इस घट में
ऐसा भाग्य किसने रचा है ?

जिसके सम्मुख मौन
वेद, पुराण, ऋचा हैं
तू कहाँ गई थी
अपना कलेजा
साथ ले जाती
अपना दिल ..... धड़कन!

तो यह सब
क्यों ...... यों...
घटित होती
अनहोनी-सी
ओ! परम-सत्ता!
स्वाभिमान से घुली
गंभीर ध्वनि
ध्वनित हुई

सम्बोधन के रूप में
अरूप शून्य में से
कि
अरे! लाला
वाणी में जरा सा
संयम ला...........ला...।

बना बावला
कहीं ..... का...
मैं भ्रमणशीला नहीं हूँ
विभ्रमशीला नहीं हूँ

सदा सर्वथा
सहज सजीली
मेरी लीला
काला पीलापन
लाला नीलापन
महासत्ता में
सम्भव नहीं है
विलोम परिणमन
पर का अनुगमन

प्रभावित हो पर से
पर के प्रति नमन...
परिणमन...!
असम्भव!
त्रैकालिक
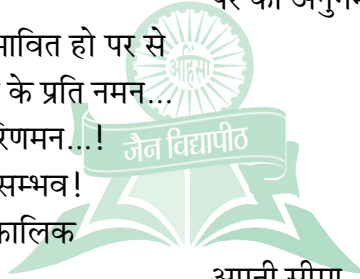
अपनी सीमा
इयत्ता का
उल्लंघन!
हाँ!
व्यक्तित्व की सत्ता में
यह सब कुछ
होना सम्भव है

तभी भटक रहा है
तू भव भव
पराभूत हो
किये बिना
अपना अनुभव

नाना विकारों में
नाना प्रकारों में
बार-बार हो उद्भव
उचित ही है
कि
कोमल-कोमल
कोंपल
पल-पल
पवनाहत हो
क्यों ना दोलायित हो
अपना परिचय देते
मौन खोल देते
गांभीर्य त्याग
भोले बालक-सम
बोल-बोल लेते
फूले वे
डाल-डाल के
गोल-गोल हैं
गाल-गाल भी
चंचलता में
झूले वे
अपनी अपनी
सीमा परिधि
सहज चाल को
भूले वे
पर! पर क्या ?
तरु का स्कन्ध!...
निस्पन्द! स्तब्ध! होता है
कब हुआ ? वह स्पन्दित!
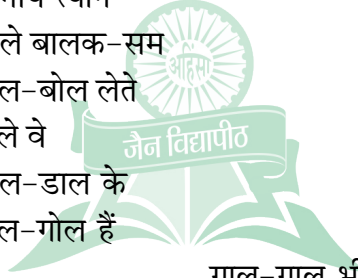
पुरुषार्थ के बल
केवल बल का
विस्फोटक हो जा
हे! भव्य!

भावी–भवातीत
शिव शंकर!
हे! शंभव!
अब तो कर ले
आत्मीयता का
अव्यय भव–वैभव का

अनुपम अनुभव!
हृदय में उठती हुई
तरंगमाला
समर्पित करती हुई
लघु सत्ता

ओ महाशक्ति!
अपनी शक्ति से
या युक्ति से
इसे प्रभावित कर दो
शासित कर दो
अपने शासन से

ऐसा सम्मोहित कर दो
कि यह
अर्पित हो सके
सेवक बन कर
पाद–प्रान्त में

सरोष स्वरों में
महासत्ता का उत्तर!
सर्वंसहा हूँ
सर्वं स्वाहा नहीं हूँ
लेना नहीं
देना ही जानती हूँ

जीवन मानती हूँ
महा सत्ता माँ
दूसरों पर
सत्ता चलाना
हे वत्स!
हिंसक कार्य मानती है

आरूढ़ हो
सिंहासन पर
शासक बन
शासन चलाना
परतन्त्रता का पोषण है

स्वतन्त्रता का शोषण है
यही माँ का सदा सदा बस
उद्घोषण है
सत्पथ दर्शक
दिव्यालोक
रोशन है! रोशन है!!

❑❑❑

बिजली की कौंध

आलोक का अवलोकन
आँखें करतीं
अकुलातीं, विकलित होतीं
एक पर टिकती नहीं
उस की ऊर्जा बिकती है
पल–पल परिवर्तित हो
पर पर जा टिकती है

यही कारण है
हे! आलोकपुंज!
आलोक तुम से
नहीं चाहता यह
विशुद्धतम तम–तम में
आँखें पूरी खुलती हैं
एक पर टिकतीं अनायास!
अपलक निश्चल होती है
अवलोकन पूरा होता है

मनन मन्थन अबाधित चलता है
अनुभूति में मति ढलती है
इसलिए आलोक बाधक है

अलिगुण कालिख अन्धकार!
साधक है इस साधक को
अपना आलोक
इन आँखों पर मत छोड़ो...!
ओ! आलोक–धाम!
बिजली कौंधती है तब!
आँखें मुँदती हैं!

❑❑❑

प्यास पराग का

ऊर्ध्वमुखी हो
ऊर्ध्व उठा है इतना
कि जिसे
अशन-वसन की
ललन-मिलन की
परस-हसन की
और

प्रभु पद दर्शन की तक
इच्छा नहीं शेष...!
गुण-सुरभि से सुरभित
फुल्लित फूल-परागी
कहाँ है वह वीतरागी

कहीं हो
उसे हो नमन
पराग प्यासा
अलि बन रागी!

❑❑❑

कदम फूल, कलम शूल

इस युग में भी
सत-युग सा
सुधार तो हुआ है
पर लगता है
उधार हुआ है,

अन्यथा
कभी का हुआ होता
उद्धार...।
प्रभु के कदमों पर
चलने वाले कदम कम नहीं हैं
उन कदमों में
मखमल मुलायम
अच्छी अहिंसा पलती है

साथ ही साथ
उन कलमों में
हिंसा की दुगनी ज्वाला जलती है
इस युग में भी
सत युग सा
सुधार तो हुआ है
पर लगता है
उधार हुआ है!

❑❑❑

मन्थन मथनी

मणिमय मौलिक
दिव्यालौकिक
मनहर हार
जब से तुम से
प्राप्त हुआ है
उसे बस!
अपहरण करना चाहती है
मुझे वरण करना चाहती है
अनन्त भविष्य में
मेरे चरण-शरणा
गहना चाहती है

स्वयं अकेली
जीवित रहने को
स्वीकृति है
इच्छा है
पर! धृति नहीं है
अक्षमा!

विलम्ब हुआ
सेव्य की गवेषणा में
कारुणिक आँखों से
मन ही मन...

मानो! मौन कहती
माँग रही है
पुनः पुनः क्षमा...!
मृदु-मुक्ति-रमा!

परन्तु यह सब
इसे कब स्वीकार है ?
यह स्वयं ही
श्रीकार है
इस गूढ़ गोपनता को
इसने सूँघा है
इस की नासिका
सोई नहीं अब!
उत्थानिका है
और
एक और कारण है

दासी दास बनना
इतनी परतन्त्रता नहीं
जितनी, कि
ईश स्वामी बनना
परतन्त्रता की अन्तिम सीमा है
इसलिए
अक्षतवीर्य हूँ और रहूँ...

अविवाहित!
अबाधित बनने
विवाह करना
रमणी-रमण में रमना
मातृ-सेवा से वंचित रहना है ना!

यह एक महती
असह्य वेदना है
मेरे लिए...।

हे चितिजननी!
अंग-अंग को
अनंग-अंगार
अंगारित कर न ले
अंगातीत अनुभव क्षण में
संगातीत-भावित-मन में
अंकुरित विकार कर न ले
और
महदाकार धर न ले

इससे पूर्व
सरस-शान्त-सुधा
कृपावती! कर कर कृपा
इसे पिला दे...।
हे! यतिगणनी!
फलस्वरूप
रति, रति-पति के प्रति
मति में रतिभाव
हो न सके प्रादुर्भाव!
बस!
इस मति की रति
विषय-विरति में
सतत निरत रहे

हे रतिहननी!
जिनमें परम शान्त रस
पर्याप्त मात्रा में
छलक रहा हो

जिनमें चिति गोपन-पन
ऊपर आने को
मचल रहा हो

ऐसे श्रुति-मधुर
अश्रुत-पूर्व
आतम गीत.....संगीत
सुना-सुना कर
संकट कंटक विहीन
अपने अंक में
इसे बुला ले!
सुचिर काल तक
इसे सुला ले!
हे! मन्मथ-मथनी!
मार्दव माता
मतिशमनी!
फलतः निश्चित
समग्र ऊर्जा
ऊर्ध्वमुखी हो
आतम पथ पर
यात्रित हो।
मूर्त का बहिष्कार
अन्तर्मुहूर्त में
त्रुटित गात्रित हो।
परिधि से हट कर
सिमिट-सिमिट कर
अमित केन्द्र में,
एकत्रित हो।
आगामी अनन्तकाल तक
एकतंत्रित हो।
हे! चितिजननी!

❑❑❑

सागर-तट

अज्ञात पुरुष
सागर-तट पर
निर्निमेष!
निहार रहा है
वस्तु-स्वरूप
रूप-लावण्य
ज्ञात करना चाह रहा है
और ..... वह ..... स्वयं
उधर से...।
ठहर ठहर कर
गहर गहर कर
अपार सागर
रहस्यमय गाथा
गाता .... गाता!
जा रहा है ...... जा रहा है
लहर लहर चुन
तट तक लाकर
लौट रहा है, लौट रहा है...
लहरों को मुड़कर कहाँ निहारता है ?
कब निहारा ?
लहर लहर है
नहीं नहर है
नहरों में लहर हैं
लहरों में नहर नहीं
लहर जहर हैं
कहाँ खबर है ?
किसे खबर है ?

उसी जहर से
अपना गागर
भरता जाता, भरता जाता
यह संसार!
प्रहर–प्रहर पर
मरता जाता, मरता जाता ... यह संसार!
दुःख से पीड़ित
आह! भरता
मैं हूँ शाश्वत सत्ता
अविनश्वर जल का आकर।
पर
प्रायः अज्ञात।
मेरा ज्ञात होना ही
मोक्ष है, अक्षय...
मोह का क्षय है
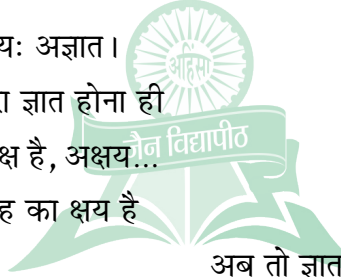
अब तो ज्ञात कर ले
कम से कम
अपने पर,
महर महर कर ले
हे अज्ञात पुरुष!
अपने पर
महर महर कर ले।

❑❑❑

महका मकरन्द

हरा भरा था
पल्लव पत्तों
से उभरा था
प्रौढ़ पौधा
लाल गुलाब का
कल तक!
डाल-डाल के
चूल-चूल पर
फूल-दल फूला
महका मकरन्द
पूरा भरा था
कल तक...!
आज उदासी है उसमें...!
अकुलाया है

लगता है
घबराहट से उसका कण्ठ
भर आया है
कौन सुनता है उस रुदन को
अरण्य रोदन जो रहा
जिस पर मँडराता
मकरन्द प्यासा
भ्रमर-दल ने
इस भीतरी गन्ध को भी
सूँघा है
अपनी नासा से
अपनी आजीविका
लुटती देख...!

बुला रहा है माली को
और कह रहा है
क्या सोचता है ?
अपराधी और नहीं
हे! उपचारक!
ऊपर ऊपर केवल
उपचार करता जा रहा है
अन्धाधुंध...!
क्या यह उपचार है ?
मात्र उपचार!

भीतर झाँकना भी अनिवार्य है
तू भूल रहा है
इस के मूल में
एक कीड़ा
क्रीडा कर रहा है
सानन्द
मकरन्द चूस रहा है
क्या ? अभी ज्ञात नहीं
हे! बावला बागवान!
कैसे बनेगा तू ?
भाग्यवान! भगवान...!

❑❑❑

राकेन्दु

इसी की गवेषणा
करनी थी इसे
कि
किस कारण से
समग्र–सत्ता–सिन्धु
उमड़ रहा है यह
तट का उल्लंघन तक
कर गया है अब!
नाच नाचते
उछल उछल कर
उज्ज्वल उज्ज्वल
ये बिन्दु! बिन्दु!
हे! राकेन्दु!

तभी तो
चन्दन–गन्ध लिये
कर कमल बन्द हुए
मन्दी–बन्दी
नयन कुमुदिनी
मुदित हुई
मन्द मन्द मुस्कान लिये
मधुरिम मार्दव
अधरों पर
और
यह चतुर–चातुर
चेतन चातक
चकित हुआ
भाव चाव से

शीतल चाँदनी का
चिदानन्दिनी का
पान कर रहा है
इतना ही नहीं
और भी गोपनता

बाहर आ प्रकाश को छू रही है
मुक्ता फल सम
शान्त शीतल
शुभ्र शुभ्रतम
सलिल सीकर
लीला सहित

बरस रहे हैं
इस के इस
मानस की इन्दुमणि से
इसलिए
सुधा-सिन्धु हो तुम!
सौम्य-इन्दु हो तुम!

❑❑❑

पारदर्शक

हे! योगिन्
दिन-प्रतिदिन
यह आभास
अहसास हो रहा है इसे
कि
आपका परिणमन
स्वरूप विश्रान्त नहीं है
अपना प्रान्त
नितान्त ज्ञात हुआ है
आप्त हुआ है 'वह'
पर!
कहाँ प्राप्त हुआ है ?
वह रूपातीत
रसातीत उज्ज्वल जल से
कहाँ ? शान्त हुआ है ?
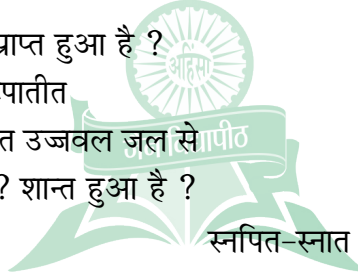
स्नपित-स्नात कहाँ हुआ है
अनन्त काल से
विमुख जो था
उस ओर मुख हुआ है
केवल...!
केवल सुख की ओर यात्री
यात्रित हुआ है
यात्रा अभी अधूरी है
पूरी कब हो...!
इसलिए
आपका हृदय-स्पन्दन...!

मानो मौन कह रहा निरन्तर!
जो अन्दर चल रही है
उसी की उपासना
परमोत्तम साधना
रूपातीत को स्वप्रतीत को
अर्पित समर्पित है
अनन्तशः वन्दन!
यद्यपि नीराग हो
निरामय हो
पर!...
आराधक हो
आकार से आकृत हो
आवरण से आवृत हो

कहाँ तुम प्राकृत हो ?
कारण विदित है
जड़मय इन
साकार आँखों में
त्वरित अवतरित हो
निराकार से
निरा ... निराकृत हो...!
फिर! फिर क्या ?...
आकार के अवलोकन से
ये आस्थावान विचार
कब हो सकते साकार...!
आराधक की आराधना से
यह आकुल आराधक
आराध्य कब हो सकता ?

पार-प्रदर्शक होकर भी
पार-प्रदर्शक नहीं हैं आप!
दर्शक आपका दर्शन करता है
पर!
स्वभाव भाव दर्शित कब होता ?
दर्शक को
समुचित है यह
दुग्ध धवलतम है
किन्तु
दुग्ध की समग्र-सृष्टि
अपने उदरगत पदार्थ-दल को
स्व-पर समष्टि को
दर्शित-प्रदर्शित
कहाँ ? कराती है ?
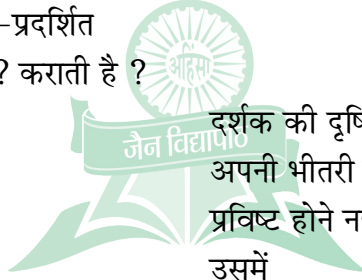
दर्शक की दृष्टि को
अपनी भीतरी गहराई में
प्रविष्ट होने नहीं देती
उसमें
झुक कर झाँकने से
दर्शक को
अपना बिम्ब..... वह
अवतरित कहाँ दीखता ?
काश! कुछ
झिल मिल झिल मिल
झलक जाये!
केवल ... आकार
किनारा .... छाया...!

समग्र-स्वरूप साक्षात्कार कहाँ ?
केवल बस! उस दास की दृष्टि
द्वार पर उदासीना
प्रवेश की प्रतीक्षा में
क्षीणतम श्वास में
आशा सँजोयी
रह जाती खड़ी
स्वयं भूल कर
बाहरी अचेतन स्थूल पर
अनिमेष दृष्टि गड़ी
इसलिए
दुग्ध में मुग्ध लुब्ध नहीं होना...!
वह स्वयं स्वभाव नहीं
स्वभाव प्रदर्शक साधन नहीं...

किन्तु!
आर-पार प्रदर्शक
अपने में अवगाहित होने
अवगाहक को
आह्वान करता है
अवगाह-प्रदायक
अबाधित..... अबाधक...!
वह शुद्ध, सिद्ध घृत है
सार है, अमृत है
उसमें झाँको
अपनी आँखों
यथावत् आँको
व्यष्टि समष्टि
समग्र सृष्टि
साक्षात्कार अक्षत..... धार।
शाश्वत ..... सार ...!

❑❑❑

मन की भूख मान

जैसे जैसे.....
सहज रूप से
विनीत ज्ञान का
विकास होता है
वैसे वैसे
मूल रूप से
मानापमान का
विनाश होता है
स्वाभिमान के
उल्लास विलास में
मृदुल ..... मार्दव
मंजुल हास में
विनय गुण का
अनुनय करता
अवनत विनयी
ज्ञान-दास होता है

परम-सत्ता का
परम उदास होता है
समर्पित होता है
सब इतिहास...!
इति .... हास होता है
भीगा भाव
प्रतिभास होता है
समुचित है वह
पल्लव, पत्रों, फूल-फलों के
विपुल दलों से, लदा हुआ है
धरापाद में, धरा माथ वह
महक सूँघता
अवनत पादप
आतप हारक
..... आप...!

❑❑❑

केली-अकेली

जीवन में एक
निरी भीतरी
घटना घटी है
जब से
मृदु-मँजुल
पूर्व अपरिचित
समता से मम ममता
मित्रता पटी है
अनन्त ज्वलन्त
अपूर्व-क्षमता
इसमें प्रकटी है
जब से प्रमाद-प्रमदा की
ममता तामसता
बहु भागों में बटी है
उसे लग रही
अटपटी है
प्रेम-प्यास...!
घटती घटती
पूरी घटी है
और वह स्वयं
असह्य हो पलटी है
कुछ कुछ अधछुपी सी
अधखुली रिपुता रखती है
टेढ़ी-सी
दृष्टि धरी है
रोषभरी कुछ कहती सी
लगती है
अपलक लखती है मुझे...!

क्या दोष है मुझ में ?
क्या हुई गलती है ?
अब तक मुझ पर
रुचिकर दृष्टि रही
आज! अरुचिकर
दृष्टि ऐसी...!
बनी कैसी यह ?
आप प्रेमी
यह प्रेयसी
अनन्य श्रेयसी
रूपराशि हो
कब तक रहेगी अब
यह दासी-सी
उदासिनी हो प्यासी
अब तक इसे
प्रेम मिला
क्षेम मिला

किन्तु इसके साथ...!
यह अप्रत्याशित
विश्वासघात...!
क्यों हो रहा है
हे! नाथ...
जीवन शिखर पर
वज्रपात है यह!
बिखर जायगा सब!
आपत्ति से घिर आया जीवन!
आपाद माथ गात
शून्य पड़ गया है
हिमपात हुआ हो कहीं...!
जम गया है

दीनता घुली आलोचना...
प्रमाद की, ताने .... बाने
सुनकर
सुषमा समता ने
राजा की पट्टरानी सी
पुरुष को मौन देख कर
सौत–सी
थोड़ी–सी चिढ़ी
थोड़ी–सी मुड़ी उस ओर...!
मौन तोड़ा है
पुरुष स्वयं विश्रान्त हैं
शान्त हैं
बोलेंगे नहीं
मौन तोड़ेंगे नहीं

और चिरकाल तक
मैं अकेली
सुरभित चम्पा
चमेली बनकर
पुरुष के साथ
करूँगी सानन्द केली!
पिला–पिला कर
अमृत–धार
मिला–मिला कर
सस्मित–प्यार...!

❑❑❑

विकल्प-पंछी

चिर से छाई
तामसता की
घनी निशा वह
महा भयावह
पीठ दिखाती
भाग रही है।
जाग रही है
शनैः शनैः सो
स्वर्णाभा-सी
सौम्य सुन्दरा
काम्य मधुरिमा
साम्य अरुणिमा
ध्रुव की ओर
बढ़ी जा रही
बढ़ी जा रही...!

शनैः शनैः बस!
शैल-समुन्नत
चढ़ी जा रही
चढ़ी जा रही...।
तेज ध्यान में
तेज ज्ञान में
चरम वेग से
ढली जा रही
ढली जा रही...।
स्वैर-विहारी
विकल्प-पंछी
निजी निजी उन
नीड़ों में आ
नयन मूँद कर

शान्त हुए हैं
विश्रान्त हुए।
दूर दूर तक
फैली छाया
सिमिट-सिमिट कर
चरणों में आ
चरण वन्दना
करी जा रही
करी जा रही...।
मौन-भाव को
पूर्ण गौण कर
मुक्त कण्ठ से
मुक्त शैव स्तुति
पढ़ी जा रही...।
पढ़ी जा रही...।

सौम्य सुगन्धित
फुल्लित पुष्पित
भीगे भावों
श्रद्धांजलियाँ
चढ़ी जा रहीं
चढ़ी जा रहीं...।
अश्रुतपूर्वा
आज भाग्य की
धन्य धन्यतम
घड़ी आ रही
घड़ी आ रही...।
ललित छबीली
परम सजीली
दृष्टि-सम्पदा
निज की निज में
गड़ी जा रही
गड़ी जा रही...।

❑❑❑

करुणाई

विशाल विशालतम
निहाल निहालतम
विश्वावलोकिनी
विस्फारिता
दो आँखें
जिन में झाँकता हूँ
सहज–आप
आत्मीयता आँकता हूँ
जहाँ निरन्तर
तरंग क्रम से
असीम परिधि को
प्रमुदित करती है
तरलित करती है
करुणाई...

पर!
लाल गुलाब की
हलकी–सी वह...।
क्यों तैर रही है
अरुणाई... ?
बताओ इसमें क्या है ?
गहनतम गहराई...।
हे शाश्वत सत्ता!
क्या यही कारण है ?
जो विलम्ब हुआ
आत्मीयता उपेक्षित कर
निरालम्ब हुआ

भटकता रहा
सुचिर काल तक
लौटा नहीं
रोता हुआ भी

इसी बीच
मौन का भंग होता है
और!
गौण का रंग होता है
'नहीं नहीं, यथार्थ कारण और है'
जो निकटतम है
ज्ञात होना
विकटतम है
कि
सत्ता के रोम-रोम पर
पड़ा हुआ
प्रभाव ...... दबाव
परसत्ता का
राजसत्ता-राजसता की
वह परिणति...
अरुणाई...

अपने चरम की ओर
फैलती तरुणाई...
उसी की यह
परछाई है...
प्रतीत हो रही है
तेरी आँखों से
मेरी आँखों में
अपना दोष, भला हो
पर पर रोष उछालो...।

जब नहीं होता
संयम-तोष
घट में होश
'यह श्रुति'
श्रुति सुनती है

तत्काल
आँखें खुलीं
राजस-रज...
..... धुली
भ्रम टूट गया
श्रम छूट गया
और...

गुरु सत्ता में
लघु सत्ता जा
पूर्ण मिली
पूर्ण घुली
मधुरिम संवेदन से
आमूल सिंचित हुआ
एक ताजगी
एकता जगी...।

❑❑❑

प्रति-छवियाँ

भू-मण्डल में
नभ-मण्डल में
अमित पदार्थ हैं
अमिट यथार्थ हैं
और उनमें
समित कृतार्थ हैं
अमेय भी हैं
प्रमेय चित हैं
ज्ञेय ध्येय हैं
तथा हेय हैं
जड़ता गुण से
विरचित हैं
मोहीजन से
परिचित हैं

इन सब को तुम।
नहीं जानते
हे! जिनवर!
परन्तु ये सब
तव शुचि चित में
प्रेषित करते
अपनी अपनी
पलायुवाली
प्रति-छवियाँ
अवतरित हो
ज्ञानाकार धरती
उपास्य की उपासना
मानो! उपासिका
करती रहती
बनकर छविमय आरतियाँ...
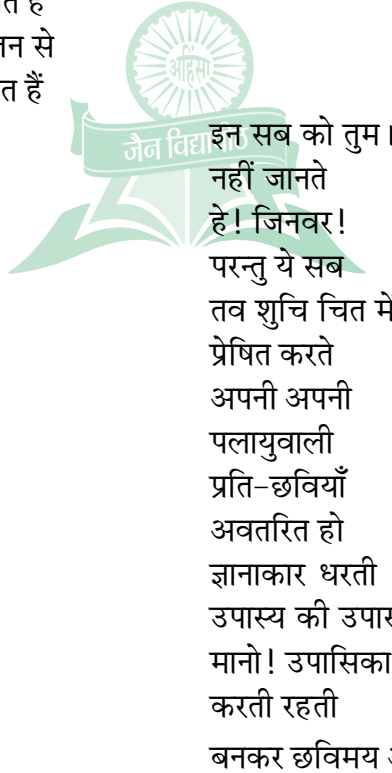
यही आपकी विशेषता है
बहिर्दृष्टि निश्शेषता है
इसलिए प्रभु
कृतार्थ हैं
बने हुए परमार्थ हैं
तुममें हममें
यही अन्तर है
तुम्हारी दृष्टि सो
अन्तर्दृष्टि है
व्यन्तर्दृष्टि नहीं
यही निश्चय नियति है
यही अन्तिम नि.....यति है...।
यही अन्तर्दृष्टि
निरन्तर उपास्य हो
इस अन्तर में

क्योंकि
विश्वविज्ञता स्वभाव नहीं
विभाव भी नहीं
अभाव भी नहीं
वह निरा
ज्ञेय-ज्ञायक भाव है
औपचारिक
संवेदन शून्य...।
यथार्थ में
स्वज्ञता ही
विज्ञता है स्वभाव है
भावित भाव...।

औपाधिक सब भावों से
परे.... ऊपर उठा बहुत दूर असंपृक्त!
और वह संवेदन
स्व का ही होता है
चाहे वह स्वभाव हो या विभाव।
पर का नहीं संवेदन
पर का यदि हो
दुःख का अन्त नहीं
सुख अनन्त नहीं
और फिर सन्त कहाँ ?
अरहन्त कहाँ ?
किन्तु ज्ञात रहे
स्वसंवेदन भी
सांप्रतिक तात्कालिक!
त्रैकालिक नहीं
अन्यथा
दुःख के साथ सुख का
सुख के साथ दुःख का
क्यों न हो
संवेदन! वेदन!
हे चेतन!
इतना ही नहीं
आत्म-गत अनन्तगुण
पूर्ण ज्ञान से भी
संवेदित नहीं होते
केवल ज्ञात होते
यह ज्ञात रहे
अथवा ज्ञान में
अपना-अपना
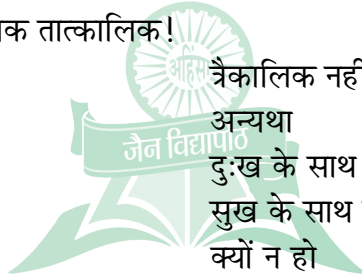
रूपाकार ले
झलक जाते स्वयं आप
ज्ञेय के रूप में
परिवर्तित प्रतिरूप में
जैसे हो वह
सम्मुख दर्पण
विविध पदार्थ
अपने अपने
रूप रंग-अंग.....ढंग
करते अर्पण
दर्पण में... पर ...वह
क्या विकार झलकता ?
क्या ? तजता दर्पण
आत्मीयता उज्ज्वलता ?

सो..... मैं ..... हूँ
केवल संवेदन-शील
धवलिम-चेतन जल से
भरा हुआ लबालब...!
तरंग-हीन
शान्त शीतल-झील
खेल खेलता
सतत सलील
शेष समग्र बस!
शून्य ... शून्य ... नील!

❑❑❑

दर्पण में दर्प न

आखिर यह
अपार सिन्धु
क्या है सागर
अगर...।
बिन्दु .... बिन्दु...
अनन्त बिन्दु
वात्सल्य सौहार्द सहित
हो कर परस्पर
मुदित-प्रमुदित
आलिंगित-आकुंचित नहीं होते।
मगर!
मगरमच्छ कच्छप
मारक विषधर अजगर
वहीं चरते हैं
वहीं चलते हैं

हिंसकों के डगर
अनेक महानगर
वहीं बसते हैं
वहीं पलते हैं
महासत्ता नागिन
फूत्कार करती
अपनी फणावली
उन्नत उठाकर
अपनी सत्ता सिंहासन
वहीं जमाती है
किन्तु काल्पनिक
इसलिए
यह परम सत्य है

सिन्धु अंशी नहीं है
बिन्दु अंश नहीं है उसका
बिन्दु का वंश सिन्धु नहीं है
किन्तु! बिन्दु...!
अंश अंशी स्वयं है
स्वयं का स्वयं आधार आधेय...।
परनिरपेक्षित जीवन जीता है
केवल सागर ...... लोकोपचार...
इसी से अकथ्य सत्य वह
सार तथ्य वह...।
और पूर्ण फलित हो रहा है
कि
लय में लय होना
यह सिद्धान्त जो रहा है
अनुचित सिद्ध हो रहा है
और!
प्रकाश प्रकाश में
लीन हो रहा है
यह भी उपचार है
कारण यह है
कि
प्रकाश प्रकाशक की
अभिन्न-अनन्य
आत्मीय परिणति है
गुण-धर्म-भाव
धर्म धर्मी से
गुण गुणी से
परत्र प्रवास करने का
प्रयास तक नहीं कर सकते

क्योंकि
धर्मी का धर्म
गुणी का गुण
प्राण है, श्वास है
यह बात निराली है
कि
बिना प्रयास प्रकाश से
प्रकाश्य प्रकाशित होते हैं
यह उनकी योग्यता है
किन्तु
प्रकाश्य या प्रकाशित में
स्व-पर प्रकाशक का
अवतरण अवकाश नहीं
यह भी बात ज्ञात रहे
कि जिनमें

उजली उजली उघड़ी
पूरी कलायें हैं
झिलमिलाये हैं
गुण-धर्म-जाति की अपेक्षा
एक से .... लसे हैं
पर! बाहर से
उनमें
अपने अपने
अस्तिपना
निरे.......निरे हँसे हैं
फिर! ऐक्य कैसे ?
शिव में शिव
जिन में जिन
चिर से बसे हैं

निज नियति से
सुदृढ़ कसे हैं
भ्रम भ्रम है
ब्रह्म ब्रह्म है
भ्रम में ब्रह्म नहीं
ब्रह्म में भ्रम नहीं...।
अहा! यह कैसी ?
विधि विधान–व्यवस्था
प्रति–सत्ता की
स्वाधीन स्वतन्त्रता
परस्पर
एक दूसरे के
केवल साक्षी...।
जिनमें कन्दर्प.......दर्प न
कहाँ करते ?
अर्पण–समर्पण
अपना–पन
दर्पण में दर्प न...।

❑❑❑

कब भूलूँ सब ?

स्वर्गीय भुक्ति नहीं

पार्थिक शक्ति नहीं

ऐसी एक युक्ति चाहिए

बार बार ही नहीं

एक बार भी अब !

बाहर नहीं आ पाऊँ

निशि दिन रमण करूँ

अपने में

द्वैत की नहीं

अद्वैत की भक्ति चाहिए

आभरण से

आवरण से

चिरकाल तक

मुक्ति चाहिए

ओ! परम सत्ता!

अनन्त शक्ति के लिये

निगूढ़ में बैठी

विलम्ब नहीं अब

अविलम्ब!

निरी निरावरण की

व्यक्ति चाहिए

भावी भटकन की
काँक्षाओं–कुण्ठाओं
डाकिनी सम्मुख न आये
विगत वनी में रहती
पिशाचिनी का
मन में स्मरण नहीं आये
स्मरण–शक्ति नहीं
विस्मरण की
शक्ति चाहिए।

❑❑❑

पक्षपात : पक्षाघात

शिशिर वात से
छिल सकता है
अशनिपात से
जल सकता है
गल सकता भी
हिम पात से है
पल पल पुराना
अधुनातन
पूरण गलन का
ध्रुव निकेतन
अणु अणु मिलकर
बना हुआ यह तन...।
पर! इन सबसे
कब प्रभावित होता ?
मानव मन!

और जिस रोग के योग में
भोगोपभोग में
बाधा आती है
भोक्ता पुरुष को
उसका
एक ओर का हाथ
साथ नहीं देता
कर्महीन होता है
उसी ओर का पाद
पथ पर चल नहीं सकता
शून्य दीन होता है
मुख की आकृति भी
विकृति होती है
एक देश!

वैद्य लोग
उसे कहते हैं
पक्षाघात रोग
किन्तु उसका
मन मस्तिष्क पर
प्रभाव नहीं
दबाव नहीं
इसलिए
पक्षाघात ही
स्वयं पक्षाघात से
आक्रान्त पीडित् है
किन्तु यथार्थ में
पक्षपात ही
पक्षाघात है

जिसका प्रभाव
तत्काल पड़ता है
गुप्त सुरक्षित
भीतर रहता
जीवन नियन्ता
बलधर मन पर...।
अन्यथा हृदय स्पन्दन की
आरोहण अवरोहण स्थिति
क्यों होती है ?
किसकी करामात है यह ?
यही तो 'पक्षपात' है

सहज मानस
मध्यम तल पर
सचाई की मधुरिम
भावभंगिम तरंग
.............उठती हैं
क्रम क्रम से आ
रसना के तट से
टकराती हैं, वह
रसना तब...
भावाभिव्यंजना
करती है
पर!
लड़खड़ाती, कहती है!
कोई धूर्त
मूर्त है या अमूर्त
पता नहीं...।

मेरा गला घोंट रहा है
'ज्ञात नहीं मुझे'
'वही तो पक्षपात है'
किसी एक को देखकर
आँखों में
करुणाई क्यों ?
छलक आती है
और किसी को देख कर
आँखों में
अरुणाई क्यों ?
झलक आती है
किसका परिणाम है यह ?
इसी का नाम
'पक्षपात' है

पक्षपात...!
यह एक ऐसा
गहरा-गहरा
कोहरा है
जिसे
प्रभाकर की प्रखर-प्रखरतर
किरणें तक
चीर नहीं सकतीं
पथ पर चलता पथिक
सहचर साथी
उसका वह
फिर भला
कैसा दिख सकता है ?
सुन्दर सुन्दर-सा
चेहरा गहरा...!

पक्षपात...!
यह एक ऐसा
जल-प्रपात है
जहाँ पर
सत्य की सजीव माटी
टिक नहीं सकती
.......बह जाती
पता नहीं कहाँ ?
......वह जाती
और असत्य से अनगढ़
विशाल पाषाण खण्ड
अधगढ़े टेढ़े-मेढ़े
अपनी धुन पर अड़े
शोभित होते...।

भयानक पाताल घाटी
नारकीय परिपाटी
जिसमें
इधर उधर टकराता
फिसलता फिसलता जाता
दर्शक का दृष्टिपात।
एतावता
पक्षपात पक्षाघात है
अक्षघात है, ब्रह्मघात है
इसलिए
प्रभु से प्रार्थना है
स्वीकार हो प्रणिपात!
आगामी अनन्तकाल प्रवाह में
कभी न हो
पक्षपात से
मुलाकात...।

❑❑❑

बोल, मुस्कान!

धरती से फूट रहा है
नवजात है
और पौधा
धरती से पूछ रहा है
कि
यह आसमान को कब छुएगा।
छू ..... सकेगा क्या नहीं ?
तूने पकड़ा है
गोद में ले रखा है इसे
छोड़ दे .....।
इसका विकास रुका है
ओ! ..... माँ....।
माँ की मुस्कान बोलती है
भावना फलीभूत हो बेटा ...!
आस पूरी हो!
किन्तु
आसमान को छूना...
आसान नहीं है
मेरे अन्दर उतर कर
जब छूयेगा
गहन गहराइयाँ
तब ..... कहीं ..... संभव हो
आसमान को छूना
आसान नहीं है...।

❑❑❑

डूबो मत, लगाओ डुबकी

स्व-पर पहिचान
ज्ञान पर आधारित है
आगमालोकन-आलोड़न से
गुरु-वचन-श्रवण-चिन्तन से
अपने में
ज्ञान गुण का स्फुरण होता है
पर! सक्रिय ज्ञान
आत्मध्यान में बाधा डालता है
विकल्पों की धूल उछालता है
ध्याता की साधक दृष्टि पर।
किन्तु वही हो सकता है
उपास्य में अन्तर्धान...!
जिसका ज्ञान...!
शब्दालम्बन से मुक्त हुआ है
बहिर्मुखी नहीं
अन्तर्मुखी
बहुमुखी नहीं
बन्दमुखी
एकतान...!
यह सही है
तैरने की कला से वंचित है
उसे सर्वप्रथम
तारण-तरण तुम्बी का सहारा अनिवार्य है
उस कला में निष्णात होने तक...!

जब डुबकी लगाना चाहते हो तुम!
गहराई का आनन्द लेना चाहते हो तुम!
तब तुम्बी बाधक है ना!
इतना ही नहीं
पीछे की ओर पैर फैलाना
आजू-बाजू हाथ पसारना
यानी...... तैरना भी
अभिशाप है तब...।

यह बात सत्य है
कि
डुबकी वही लगा सकता
जो तैरना जानता है
जो नहीं जानता
वह डूब सकता है
डूबता ही है
डूबना और डुबकी लगाने में
उतना ही अन्तर है
जितना
मृत्यु और जीवन में...।

❑❑❑

तुम कैसे पागल हो

रेत रेतिल से नहीं
रे! तिल से
तेल निकल सकता है
निकलता ही है
विधिवत् निकालने से
नीर–मन्थन से नहीं
विनीत–नवनीत
क्षीर–मन्थन से
निकल सकता है
निकलता ही है
विधिवत् निकालने से।
ये सब नीतियाँ
सबको ज्ञात हैं
किन्तु हित क्या है ?
अहित क्या है ?
हित किस में निहित है
कहाँ ज्ञात है ? किसे ज्ञात है ?
मानो ज्ञात भी हो तुम्हें
शाब्दिक मात्र...!
अन्यथा
अहित पन्थ के पथिक
कैसे बने हो तुम!
निज को तज
जड़ का मन्थन करते हो
तुम कैसे पागल हो ?
तुम कैसे 'पाग' लहो।

❑❑❑

स्वयं वरण

तू तो अपना ही गीत
गुनगुनाता रहता है
रे! स्वैरविहारी मन
जरा सुन!...
संयम का बन्धन
बन्धन नहीं है
वरन...।

अबन्ध दशा का
अमन्द यशा का
अभिनन्दन-वन्दन है
अन्यथा

मुक्तिरमा वह
मोहित-सम्मोहित हो
उपेक्षित कर इतरों को
संयत को ही
क्यों करती है
स्वयं वरण... ?

❑❑❑

भींगे पंख

सूरज सर पर
कसकर तप रहा है
मैं निःसंग हूँ...।
आसीन हूँ
सुखासन पर
ललाट तल से
शनैः शनैः
सरकती-सरकती
भृकुटियों से गुजरती
नासाग्र पर आ
पल-भर टिकी
गिरती है
स्वेद की बूँद...
वायुयान गतिवाली
स्वच्छन्द उड़नेवाली
मक्षिका के पंख पर...।

और वह मक्षिका
भींगे पंख!
उड़ने की इच्छा रखती
पर! उड़ ना पाती है
धरती से ऊपर
उठ न पाती

यह सत्य है
कि रागादिक की चिकनाहट
और पर का संपर्क
परतन्त्रत का
प्रारूप है...।

❑❑❑

उषा में नशा

उषा–काल में
उतावली से
तृषा काय की
बिना बुझाये
कहाँ भाग रहा है तू ?
मुझे पूछते हो तुम...।
उषा में नशा करने वालो...
निशा में मृषा चरने वालों...!
यह रहस्य अज्ञात होना
दशा पागल की है

दिशा चाहते हो
पाना चाहते हो
सही दशा वह!
जरा सुनो!
स्वयं यह
उषा भाग रही है
जिसके पीछे पीछे
निशा जाग रही है
जिसका दर्शन...
'यह' नहीं चाहता अब...।

❑❑❑

प्राकृत पुरुष

मदन मोहिनी
रति सी मानिनी
मृदुल-मँजुल
मुदित-मुखी
मृग दृगी
मेरी मति
आज बनी है
मलिन मुखी... म्लान
अध-खुली
कमलिनी सी
और लेटी है
एक कोने में
ना सोने में
ना रोने में
जिसे चैन है
बार-बार बदल रही है
करवटें...।
इस स्थिति में
अपने होने में भी
उसे अब! हा!
अर्ध मृत्यु का संवेदन है
पूर्ण वेदन है
मेरी निरी
करुण चेतना
.......खरी
वहीं खड़ी खड़ी
समता की साक्षात् धरती
साहस धरी
हृदयवती सतियों में सती-सी
उसे देख...

अपने उदार अंक में
पृथुल मांसल
जंघा का बल दे
आकुलता से आहत
परम आर्त...।
मति मस्तक को
ऊपर उठा लिया है
और अपने
प्रेम भरे
मखमल मृदुल
कर पल्लवों से
हलकी हलकी सी
सहला रही
संवेदनशील ..... शब्दों में
संबोधित करती
साहस बाँधती
किन्तु वह
वचनामृत की प्यासी नहीं
विरागता की दासी नहीं
सरागता की अपार राशि जो रही
अपनी ही
मार्दव माँसल बाहुओं से
श्रवण द्वार बन्द कर
पीछे की ओर
दो दो हाथों से
शिर कस कर
बाँध लिया...।
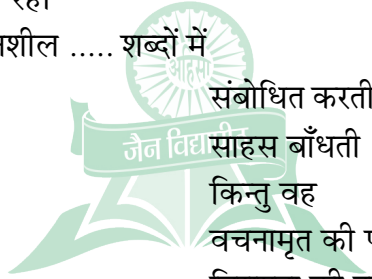
कुटिल कुटिल तम
कज्जल काले
कुन्तल बाल
भाल पर आ
बिखरे हैं
निरे निरे हो
अस्त व्यस्त
इस संकेत के साथ
कि
समुज्ज्वल-भाव-भूमि पर
अब भूल कर भी
दृष्टि-पात सम्भव नहीं...।
यह पूर्णतः प्रकट है
कि
इस मति का अवसान काल
निकट सन्निकट है

'विनाशकाले विपरीतबुद्धिः'
'अन्ते मता सो गता'
सूक्तियाँ सब ये
चरितार्थ हो रही हैं
सूखी
गुलाब फूल की लाल पाँखुड़ी सी
जिसके युगल
अधर पल्लव हैं
जिन में
परमामृत भरा था
मृत हुआ क्या, विस्मृत हुआ ?
या किसी से अपहृत हुआ ?

यह रहस्य
किसे........और ....कब
अवगत हुआ है ?
बिल से अध निकली
सर्पिणी–सी
मति–मुख से
बार–बार बाहर आकर
अधरों को सहलाती
और सरस बनाने का
प्रयास करती
दुलार प्यार करती
लार रहित रसना........।
और...

समग्र अंग का जल तत्व
भीतर की तपन से
ऊर्ध्वमुखी हो
ऊपर उठा है
और यही कारण है
कि
जिस के तरल सजल
युगल लोचन हैं
जिनमें अनवरत
करुणा की
सजीव तरंग
तैरकर तट तक आ रही है
तापानुपात की अधिकता से
बीच–बीच में
डब–डब, डब–डब
भर आते हैं

और वे दृग बिन्दु
टप-टप, टप-टप
गोल-गोल
लाल-लाल
सरस रसाल
युगल कपोल पर
मन्द ध्वनित हो
नीचे की ओर पतित होते
सूचित कर रहे हैं
पाप का फल, प्रतिफल
अधः पतन है।
अगम अतल
पाताल...।
अमित काल
तिमिरागार

मात्र सहचर रहेगा...
और उसी बीच
एक अदृश्य
दिव्य स्वर उभरा...।
शून्य में
एक बार भी
प्राकृत पुरुष का
दर्श होता
अनिर्वचनीय
हर्ष होता........इसे
जीवन दर्पण......आदर्श होता
तो........फिर.......यह
क्यों व्यर्थ में
संघर्ष होता...।

अतीत की स्मृति में
सभीत मति
डूब रही है
अधीत के प्रति
उदास ऊब रही है
उस का उर
भर-भर आ रहा है
अर्थ-पूर्ण-भावों से
और आज तक
जो कुछ घटित हुआ
हो रहा है
उसे भीतर से बाहर
शब्द रूप देकर
निष्कासित करने को
एक बड़ी
विवेकभरी
उत्कण्ठा उठी है
पर!
भाग्य साथ नहीं देता
कण्ठ कुण्ठित है
केवल रुक-रुककर
दीर्घश्वास की पुनरावृत्ति
प्रकट कर रही है
भीतर अशुभतर घुटन है
पश्चाताप की ज्वाला में
झुलस रहा है
अन्तर-जगत्
इस दयनीय दृश्य को
सेवा शीलवती
मेरी चेतना

खुली आँखों से
पी रही है
मति की, चिति की
एक जाति है ना!
यही कारण है
कि
चिति भी तरल हो आई
और सरल हो आई
वैसी मति भीतर से
तरल सरल नहीं है
स्वभावशील से
गरल ही है
और दोनों के बीच
धीमे-धीमे
आदान-प्रदान
प्रारम्भ होता है भावों का
मति का भाव
दीनता से हीनता से भरा
प्रकट होता है
भावी काल का अनन्त प्रवाह
असहनीय विरह वेदना में
व्यतीत होगा
वह अनन्त विरह
सहचर मीत होगा
गीत संगीत होगा
मेरा तब...।
रह रहकर नाथ की स्मृति
विरह अनल में
घृताहुति का
काम करेगी

अब चेतना मुख खोलती है
कि
पुरुष तो पुरुष होते हैं
और उनका
सहज धर्म है वह
हमारे लिए अभिशाप नहीं
वरदान ही है
और दुखद बन्धन
बलिदान का
अवसान का
'पुरुष को मुक्ति मिलना
विकृति से लौट
प्रकृति का प्रकृति में
आ मिलना है'
अपने में खिलना है

अपनी अपनी पूर्ण कलायें
पूर्ण खुलना है
सम्पूर्ण शुचिता लिए
चन्द्र की चाँदनी-सी।
एकतत्व में सुख है
अनेकत्व में दुःख।
एकत्व में बन्धन नहीं
सदा स्वतन्त्रता...
और! मौन छा जाता है
इधर मैं 'आत्मा' पुरुष...।
एक कोने में
बैठा हूँ स्तब्ध
निःशब्द.......केवल.......हूँ

किन्तु मम ध्रुव सत्ता
तरल नहीं सजल नहीं
सघन हो आई
वस्तुस्थिति का
गति परिणति का
अंकन कर रही है
इस निर्णय के साथ, कि
मति से बातचीत करती
इस चिति से भी
पीठ फेर लेना–विरति लेना
औचित्य होगा
और रोषातीत
तोषातीत
परम पुरुष की
यही तो है
'परुषता और पुरुषता'
यह प्रमदा में कहाँ
प्रकृति में...!

❑❑❑

अधर के बोल

सरल सलिल से
भरे हुए हो
कलुष कलिल से
परे हुए हो
इस धरती से
बहुत दूर हो तुम!
शुद्ध शून्य में
जलधर हो कर
अधर डोल रहे
इधर यह मयूर
चिर प्रतीक्षित है
आपकी इंगन-कृपा से
दीक्षित है...।

ऊर्ध्वमुखी हो
जिजीविषा इस की
बलवती है महती
तृषातुरा है
आज तक इस के
कायिक आत्मिक पक्ष
अमृत के बदले
जहर तोल रहे
तभी तो
अंग अंग से इस के
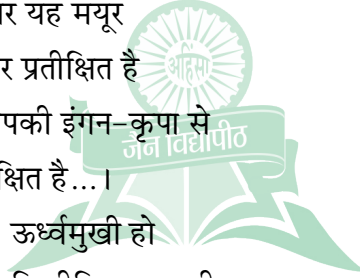
समग्र सत्त्व से
नीलिमा फूट रही है
इसलिए इसे
जोर शोर से
गरजो घुमड़-घुमड़ कर
सम्बोधित करो!
सुधा वर्षण से
शान्त शुद्ध
परमहंस बना दो इसे
विलम्ब मत करो अब...।
ऐसे इसके
अपनी भाषा में
शुष्क नीलम
अधर बोल रहे...।

❑❑❑